

३४ गाथा का भावार्थ है न? आत्मा को परभाव के त्याग का कर्तृत्व है, वह नाममात्र है।... क्योंकि ज्ञानस्वरूप है, उसे राग का त्याग करता है, वह तो नाममात्र है, रागरूप, ज्ञानस्वरूप होता ही नहीं, था ही नहीं। वह ज्ञानस्वरूप, उसे राग के त्याग का कर्तापना नाममात्र है, वह स्वयं तो ज्ञानस्वभाव है।... ज्ञानस्वभाव में जो राग का परिणमन था, उसरूप परिणमन न हुआ और ज्ञानरूप रहा, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! परद्रव्य को पर जाना,.... रागादि परद्रव्य को ज्ञान में पर जाना, फिर परभाव का ग्रहण न करना.... उस रागरूप परिणमन नहीं... ग्रहण नहीं, अर्थात् रागरूप परिणमन नहीं। वही त्याग है.... आहाहा! बाहर के त्याग की तो क्या बात करना? आहाहा! परन्तु भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, उस पर-रागरूप था, रागरूप पर्याय थी, वह ज्ञानस्वभावरूप रहकर और रागरूप नहीं हुई, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसी बात है। फिर परभाव का परिणमन न हुआ, वह त्याग है। आहाहा!

इस प्रकार, स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है,.... यह स्पष्टीकरण। ज्ञानस्वरूप भगवान जो राग में अस्थिररूप परिणमन था, वह स्वभाव स्वयं पररूप परिणमने के योग्य नहीं है, फिर भी पर्याय में था; द्रव्यस्वभाव में नहीं। (क्या कहा)? द्रव्यस्वभाव नहीं आहाहा! परन्तु पर्याय में राग का परिणमन था। यह ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा जानकर अन्दर

स्थिर हुआ। वह पर है, वह पर है; मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ – ऐसा जानकर अन्दर स्थिर हुआ, वह प्रत्याख्यान। आहाहा! ऐसे प्रत्याख्यान की व्याख्या ऐसी है। इस चरित्र की यह व्याख्या! आहाहा!

**ज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई भाव नहीं है।** ज्ञानस्वभाव, ज्ञानस्वभावरूप स्थिर हुआ, वह प्रत्याख्यान है, वह चरित्र है, वह वीतरागपर्याय है। आहाहा! जो राग, स्वभावस्वरूप-रागरूप, स्वभाव व्याप्त न होने योग्य था – राग से व्याप्त होनेवाला नहीं – ऐसा जानकर ज्ञानस्वभाव, जो रागरूप परिणमन था, वह परिणमन नहीं किया, और ज्ञानरूप रहा, उसका नाम प्रत्याख्यान और चरित्र है। कठिन बात बापू! आहाहा! कितनी ही बार सुना हो परन्तु यह बात अलग प्रकार की है भाई! आहाहा! आहा!

## गाथा ३५

अथ ज्ञातुः प्रत्याख्याने को दृष्टान्त इत्यत आह—

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।

तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी॥३५॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति।

तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुञ्चति ज्ञानी॥

यथा हि कश्चित्पुरुषः सम्भ्रान्त्या रजकात्परकीयं चीवरमादायात्मीयप्रतिपत्त्या परिधाय शयानः स्वयमज्ञानी सन्नन्येन तदंचलमालम्ब्य बलान्नगनीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वार्पय परिवर्तितमेतद्वस्त्रं मामकमित्यसकृद्वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिह्नैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेतत्परकीयमिति ज्ञात्वा ज्ञानी सन् मुंचति तच्चीवरमचिरात्, तथा ज्ञातापि सम्भ्रान्त्या परकीयान्भावानादायात्मीयप्रतिपत्त्यात्मन्यध्यास्य शयानः स्वयमज्ञानी सन् गुरुणा परभावविवेकं कृत्वैकीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वैकः खल्वयमात्मेत्यसकृच्छ्रौतं वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिह्नैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेते परभावा इति ज्ञात्वा ज्ञानी सन् मुंचति सर्वान्परभावानचिरात्।

---

अब, यहाँ यह प्रश्न होता है कि ज्ञाता का प्रत्याख्यान, ज्ञान ही कहा है, तो उसका दृष्टान्त क्या है? उसके उत्तर में दृष्टान्त-दार्ष्टान्तरूप गाथा कहते हैं —

ये और का है जानकर, परद्रव्य को को नर तजे।

त्यों और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥

गाथार्थ : [ यथा नाम ] जैसे लोक में [ कः अपि पुरुषः ] कोई पुरुष [ परद्रव्यम् इदम् इति ज्ञात्वा ] परवस्तु को 'यह परवस्तु है' ऐसा जाने तो ऐसा जानकर [ त्यजति ]

परवस्तु का त्याग करता है, [ तथा ] उसी प्रकार [ ज्ञानी ] ज्ञानी पुरुष [ सर्वान् ] समस्त [ परभावान् ] परद्रव्यों के भावों को [ ज्ञात्वा ] 'यह परभाव है' ऐसा जानकर [ विमुञ्चति ] उनको छोड़ देता है।

टीका : जैसे कोई पुरुष धोबी के घर से भ्रमवश दूसरे का वस्त्र लाकर, उसे अपना समझकर ओढ़कर सो रहा है और अपने आप ही अज्ञानी ( - यह वस्त्र दूसरे का है ऐसे ज्ञान से रहित ) हो रहा है; ( किन्तु ) जब दूसरा व्यक्ति उस वस्त्र का छोर ( पल्ला ) पकड़कर खींचता है और उसे नग्न कर कहता है कि — 'तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह मेरा वस्त्र बदले में आ गया है, यह मेरा है सो मुझे दे दे', तब बारम्बार कहे गये इस वाक्य को सुनता हुआ वह, ( उस वस्त्र के ) सर्व चिह्नों से भलीभाँति परीक्षा करके, 'अवश्य यह वस्त्र दूसरे का ही है' ऐसा जानकर, ज्ञानी होता हुआ, उस ( दूसरे के ) वस्त्र को शीघ्र ही त्याग देता है। इसी प्रकार — ज्ञाता भी भ्रमवश परद्रव्य के भावों को ग्रहण करके, उन्हें अपना जानकर, अपने में एकरूप करके सो रहा है और अपने आप अज्ञानी हो रहा है; जब श्री गुरु परभाव का विवेक ( भेदज्ञान ) करके उसे एक आत्मभावरूप करते हैं और कहते हैं कि 'तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह तेरा आत्मा वास्तव में एक ( ज्ञानमात्र ) ही है, ( अन्य सर्व परद्रव्य के भाव हैं ),' तब बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य को सुनता हुआ वह, समस्त ( स्व-पर के ) चिह्नों से भलीभाँति परीक्षा करके, 'अवश्य यह परभाव ही हैं, ( मैं एक ज्ञानमात्र ही हूँ )' यह जानकर, ज्ञानी होता हुआ, सर्व परभावों को तत्काल छोड़ देता है।

भावार्थ : जब तक परवस्तु को भूल से अपनी समझता है तभी तक ममत्व रहता है और जब यथार्थ ज्ञान होने से परवस्तु को दूसरे की जानता है तब दूसरे की वस्तु में ममत्व कैसे रहेगा ? अर्थात् नहीं रहे यह प्रसिद्ध है।

---

गाथा - ३५ पर प्रवचन

---

अब, यहाँ यह प्रश्न होता है कि ज्ञाता का प्रत्याख्यान, ज्ञान ही कहा है,.... भगवान आत्मा जाननेवाला, देखनेवाला स्वभाव, उसका प्रत्याख्यान, अर्थात्

चारित्र ज्ञान ही कहा। उसका दृष्टान्त क्या है? उसके उत्तर में दृष्टान्त-दार्ष्टान्तरूप गाथा कहते हैं—

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।

तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी॥३५॥

ये और का है जानकर, परद्रव्य को को नर तजे।

त्योँ और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥

आहाहा! टीका - जैसे, कोई पुरुष धोबी के घर से भ्रमवश दूसरे का वस्त्र लाकर, उसे अपना समझकर ओढ़कर सो रहा है.... आहा! यह दृष्टान्त, हों! और अपने आप ही अज्ञानी.... अपने आप अज्ञानी, आहाहा! हो रहा है ( - यह वस्त्र दूसरे का है - ऐसे ज्ञान से रहित ) हो रहा है;.... तब जब दूसरा व्यक्ति उस वस्त्र का छोर ( पल्ला ) पकड़कर खींचता है और उसे नग्न.... उघाड़ा करता है। आहाहा! और कर कहता है कि 'तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह मेरा वस्त्र बदले में आ गया है,.....' यह वस्त्र मेरा है, तेरा नहीं। आहाहा! तेरे वस्त्र के बदले मेरा वस्त्र तुझे अज्ञानपने अनजानपने आ गया है। 'यह मेरा है सो मुझे दे दे'....., आहाहा! तब बारम्बार कहे गये.... एक बार नहीं कहा, आहाहा! बारम्बार कहा गया। इस वाक्य को सुनता हुआ वह, ( उस वस्त्र के ) सर्व चिह्नों से भलीभाँति परीक्षा करके,.... वस्त्र के चिह्नों की परीक्षा करके कि यह वस्त्र मेरा नहीं है। आहाहा! 'अवश्य यह वस्त्र दूसरे का ही है'..... इस प्रकार ओढ़े हुए होने पर भी, आहाहा! उसके लक्षण देखे कि मेरे वस्त्र में तो ऊपर यहाँ नाम था, मेरा अंग्रेजी नाम, इसमें तो है नहीं, इसमें तो दूसरे का नाम है। आहाहा! लिखते हैं न कोट के पीछे नाम लिखते हैं। आहाहा! शीघ्र त्याग देता है। भलीभाँति परीक्षा करके, अवश्य यह वस्त्र मेरा नहीं है यह जानकर-पर का जानकर ज्ञानी होता हुआ,.... उस वस्त्र को ( पर का ) जानकर इतना ही ज्ञानी।

बारम्बार कहे गये इस वाक्य को सुनता हुआ, भलीभाँति परीक्षा करके,.... अवश्य यह वस्त्र मेरा नहीं है ऐसा — ज्ञानी होता हुआ, उस ( दूसरे के ) वस्त्र को शीघ्र ही त्याग देता है। अर्थात् ओढ़े हुए होने पर भी, अब यह वस्त्र मेरा नहीं है - ऐसा

हो गया। आहाहा! ज्ञानस्वरूप से जाना कि यह वस्त्र के चिह्न तो मेरे नहीं हैं। इसलिए अन्दर ओढ़े हुए होने पर भी वह पर का होकर रहा है अब, आहाहा!

**उसी प्रकार....** यह दृष्टान्त हुआ। **ज्ञाता भी....** जाननेवाला भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, **भ्रमवश परद्रव्य के भावों को ग्रहण करके,....** रागादि पुण्य-पाप के भाव, वह परद्रव्य के भाव हैं; वह स्वद्रव्य के भाव नहीं हैं। द्रव्य के भाव नहीं हैं, पर्याय में भले हो परन्तु वे परद्रव्य के भाव हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव, राग-द्वेष का भाव, पर का ( भाव उसे) **अपना जानकर,....** परद्रव्य के भावों को (निज) जानकर, ग्रहण करके अपने जानकर... क्योंकि वहीं दृष्टि थी। ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि नहीं थी। आहाहा! राग और द्वेष और विकल्प के परिणाम पर वहाँ दृष्टि थी। उसे अब जाना, यह है न? आहाहा!

**उन्हें अपना जानकर, अपने में एकरूप करके सो रहा है....** राग-द्वेष विकल्प, अपना ज्ञानस्वरूप भिन्न है-ऐसा जाना नहीं और ये रागादि मेरे हैं - ऐसा करके अज्ञानरूप से सो रहा है **और अपने आप अज्ञानी हो रहा है;....** कर्म के कारण नहीं। आहाहा! इन राग-द्वेष के कारण नहीं। अपने आप राग-द्वेष के भाव मेरे नहीं हैं - ऐसा नहीं जानकर, मेरे हैं - ऐसा जानकर, अज्ञानी हो रहा है। आहाहा! **जब श्रीगुरु परभाव का विवेक ( भेदज्ञान ) करके.....** आहाहा! उसे राग से भिन्न बताकर, प्रभु! यह राग के लक्षण, वह तेरे नहीं हैं। आहाहा! यह तो वहाँ ऐसा कहा कि अपने आप नहीं, उसे गुरु मिले, भेदज्ञान बतलानेवाले (गुरु मिले) इतनी बात, अपने आप नहीं जगा ऐसे जगा है - ऐसा कहते हैं।

**श्रोता :** गुरु ने उपदेश दिया न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह उपदेश इसने लिया न-ग्रहण किया न ? राग से भिन्न करने का इसने ज्ञान किया न ? तब गुरु ने उपदेश दिया - ऐसा निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है। आहाहा!

आत्मा ज्ञानप्रमाण... रात्रि में नहीं कहा था ? भगवान आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान, ज्ञेयप्रमाण है, और ज्ञेय लोकालोक है। इस प्रकार जहाँ ज्ञान में-प्रमाण में ज्ञान, आत्मा प्रमाण

है, और उस ज्ञान की पर्याय भले श्रुतज्ञान की हो ( परन्तु) यह रागादि हैं, वे ज्ञेय हैं और वह ज्ञान की वर्तमान पर्याय आत्मा में व्यापक है और वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेयप्रमाण है, अर्थात् जो रागादि वस्तु है, उसका ज्ञान करने के योग्य वह है। आहाहा! उसे अपने मानने के योग्य वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस ज्ञान की एक समय की पर्याय, आत्मा में व्यापक है, वह पर्याय, द्रव्य को जानती है; वह पर्याय, गुण को जानती है; वह पर्याय, अनन्त दूसरी पर्यायों को जानती है; वह पर्याय, पर्याय को जानती है; वह पर्याय, ज्ञेय जो राग आदि अनन्त, आहाहा! वे अनन्त ज्ञेय यह ज्ञान की पर्याय ज्ञेयप्रमाण है, अर्थात् जो अनन्त ज्ञेय हैं, उन्हें करने योग्य नहीं, जानने के योग्य हैं। आहाहा! ज्ञेय प्रमाण होने लायक नहीं, जानने के लायक है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उसने अपने लक्षण से स्वरूप को जाना, उसे रागादि के लक्षण, वे परज्ञेय के हैं ( यह जाना)। वह मेरे ज्ञान की पर्याय में उस रूप होना, वह मेरा द्रव्य स्वभाव ही नहीं। आहाहा! पर्याय में है, परन्तु मेरा द्रव्यस्वभाव उस रूप होने का नहीं है। आहाहा! ऐसा जानकर, उस ज्ञान की पर्याय से राग के लक्षण पर हैं, ऐसा जानकर... आहाहा! वे ज्ञेयरूप हैं। चैत्य-चेतक की निकटता के कारण - ऐसा लगता है कि यह ज्ञेय का ज्ञान है; वस्तुतः तो वह ज्ञान, ज्ञान का है; ज्ञेय का ज्ञान नहीं, ज्ञेय तो पर है। आता है न? चैत्य-चेतक ( गाथा २९४)। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप से चेतनेवाला और रागादि वे ज्ञेय / चैत्य ज्ञात होने योग्य है, बस! अपना होने योग्य नहीं है। आहाहा! रात्रि में तो बहुत कहा था न? यह तो आवे तब आवे न... समझ में आया?

उस ज्ञान-पर्याय में स्वयं अपने लक्षण से जाना कि मैं तो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ और राग के लक्षण से जाना कि वह तो पर है - (ऐसा) जानकर ज्ञान, ज्ञानरूप रहा और ज्ञेयरूप परिणमन पर्याय में नहीं हुआ, इसका नाम प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसी बात है। यहाँ तो अभी प्रत्याख्यान / बाह्य त्याग किया - प्रतिज्ञा ले ली, बापू! यह सब तो विकार की - बाहर की बातें हैं। आहाहा! यहाँ तो ज्ञान की एक समय की पर्याय ऐसी स्वयं राग के लक्षण को परद्रव्य के भावरूप से और स्वद्रव्य का स्वभाव नहीं - ऐसा (लक्षणभेद) जानकर उस ज्ञान की पर्याय की ताकत, एक-एक पर्याय की ताकत में अनन्त सप्तभंगी उठती है। आहाहा!

वह ज्ञान की एक समय की पर्याय, पर्यायरूप से है, वह राग-ज्ञेयरूप नहीं। वह पर्याय, पर्यायरूप से है और दूसरी पर्यायरूप से नहीं। आहाहा! ऐसा गम्भीर सागर है, भगवान स्वभाव!

**श्रोता :** दो बोल हुए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दो बोल हुए, ऐसे अनन्त बोल ले लेना।

एक-एक पर्याय, आहाहा! तब ज्ञान की एक समय की पर्याय स्वद्रव्य को जाने, अनन्त गुण को जाने इसके अतिरिक्त अनन्त पर्यायें जिनका पार नहीं... पार नहीं, आहाहा! उन पर्यायों को भी वह पर्याय जाने, अनन्त-अनन्त पर्याय, जिस पर्याय में यह अन्तिम है -ऐसा कोई छोर ही नहीं... आहाहा! ऐसी अनन्त संख्या में जो पर्यायें, उन्हें भी यह पर्याय जानती है। आहाहा! ऐसी ही पर्याय श्रद्धा की, ऐसी अनन्त-अनन्त स्वज्ञेय और परज्ञेय, उन्हें वह श्रद्धती है। आहाहा! मेरे रूप नहीं परन्तु श्रद्धती है कि यह पर है और यह मैं हूँ। आहाहा! उस श्रद्धा में भी अनन्त ताकत है। आहाहा!

रागरूप नहीं होना, और उसे दूसरी पर्यायरूप भी नहीं होना। आहाहा! ऐसी अनन्त स्वज्ञान और ज्ञेय का ज्ञान है, उसे वह प्रतीति करती है। आहाहा! उस प्रतीति की पर्याय भी अनन्त-अनन्त माहात्म्यवाली है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय, स्वज्ञान और परज्ञेय - सिद्ध, अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद के जीव, अल्पज्ञ पर्यायवाले अनन्त जीव, गुणों से पूर्ण, ऐसे सर्वज्ञ पर्यायवाले अनन्त जीव, उन्हें भी वह ज्ञान की पर्याय अपने में रहकर (जानती है)। पर का अस्तित्व है, इसलिए नहीं। अपनी ताकत से स्व-पर को जानने की ताकतवाला है। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! ऐसी बातें हैं। रात्रि को थे न? तब बहुत निकला था भाई! यह तो स्वयं के कारण निकलता है, निकले तब होता है। आहाहा!

यहाँ तो क्या कहना है कि ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उस राग को पररूप-पर को ज्ञेयरूप जानने का स्वभाव है, ऐसा जिसने जाना, यह जाना कि रागरूप नहीं हुआ और ज्ञानरूप रहा, उसका नाम राग का त्याग नाममात्र कथन है। आहाहा! वरना ज्ञानस्वभाव भगवान, रागरूप हुआ ही नहीं स्वभाव। पर्यायरूप हुआ है तो उसे जाना कि यह तो पर है। आहाहा! मैं तो उसका, मुझसे, उसके अस्तित्व बिना जानना मेरा स्वभाव है, आहाहा!



उसका रागादि अस्तित्व है; इसलिए उसे मैं जानने के स्वभाववाला होता हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

ऐसी एक-एक पर्याय अनन्त सामर्थ्यवाली है। स्वरूप की स्थिरता की पर्याय भी अनन्त सामर्थ्यवाली है। आहाहा! रागरूप न होकर स्थिररूप हो, वह भी पर्याय की अनन्त ताकत है। आहाहा! एक ही पर्याय में भी स्थिर की पर्याय में अनन्त सप्तभंगी... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा का ज्ञान-पर्यायस्वरूप, श्रद्धा-पर्यायस्वरूप, आनन्द-पर्यायस्वरूप उससे जाना कि रागादि मेरे द्रव्यस्वभाव से पूर्ण व्याप्त होना, वह वस्तु (स्वरूप) नहीं है, पर्याय में निमित्त के लक्ष्य से परिणमन हुआ परन्तु मेरा द्रव्यस्वभाव उसरूप व्याप्त हो - ऐसा नहीं है। ऐसे द्रव्यस्वभाव को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय... आहाहा! राग को पररूप से जानने के स्वभाववाली पर्याय, रागरूप न होकर ज्ञानरूप, ज्ञानरूप स्थिर रही, यह उसका नाम यहाँ त्याग कहा है, वह नाममात्र है। आहाहा! इतनी शर्तें और इतनी जवाबदारी। कहो, नवरंगभाई!

रात्रि को तो बहुत कहा था, आहाहा! यह तो सब... यहाँ तो यह आया न, यहाँ कि गुरु ने परम विवेक करके उसे बताया तो उसने किया। आहाहा! भाई! रागादि तेरी चीज नहीं हैं; परिणमन में भले हो परन्तु तेरे द्रव्यस्वभाव की वह चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? राग, चाहे तो दया, दान, भक्ति आदि का हो, चाहे तो सूक्ष्म राग का विकल्प हो, वह भी परभाव है। मैं तो उसका मुझमें रहकर जाननेवाला, उसे स्पर्श किये बिना, उसके अस्तित्व के कारण मैं उसका ज्ञान करता हूँ - ऐसा भी नहीं (परन्तु) मेरे ज्ञान की पर्याय का ही इतना स्वभाव है कि पर को और स्व को जानने में रहना, यही मेरी स्थिति है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसा आया है।

ऐसा जानकर, जाना, जाना कि यह पर है; मैं नहीं - ऐसा जो ज्ञानस्वरूप ज्ञान में स्थिर हुआ, ज्ञान में स्थिर हुआ, उसने राग का त्याग किया, यह नाममात्र कथन किया है, स्थिर हुआ वही - प्रत्याख्यान है। अब यह प्रत्याख्यान और चारित्र की व्याख्या! राग के अभाव, स्वभावरूप होना वह यह! राग के स्वभावरूप न होना और द्रव्य के स्वभावरूप होना, उसका नाम यहाँ प्रत्याख्यान और चारित्र है। आहाहा! यहाँ तो बाहर के कुछ व्रत

लिये और अमुक किया (तो मान लेते हैं) हो गया चारित्र। यह द्रव्यचारित्र। आहाहा! भाई! बड़ी भूल है, प्रभु! इस पर्याय का फल तुझे कठिन पड़ेगा प्रभु! आहाहा! राग की क्रिया को चारित्र की क्रिया मानना, वह दुःख तुझे कठिन पड़ेगा, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो रागरूप न होना, आहाहा! और राग है, इसलिए ज्ञान में स्थिर हुआ - ऐसा नहीं है। राग है, इसलिए राग का यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। राग है, इसलिए यहाँ ज्ञान में उसकी श्रद्धा हुई - ऐसा नहीं है। श्रद्धा की पर्याय स्वतन्त्ररूप से ज्ञेय और ज्ञान को श्रद्धे-प्रतीति करे - ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसा स्वरूप, अब लोगों को (कठिन लगता है) इस चारित्र की यह व्याख्या है। वे बेचारे कल प्रसन्न हुए थे, दोपहर को आये थे।

ओहो! गजब प्रत्याख्यान। मैंने कहा - यह दोपहर में २९५ में आनेवाला है - ऐसा कि ज्ञानी को भी दुःख का वेदन है-आनन्द का वेदन है। २९५ (वचनमृत में) आनेवाला है। वह दुःख का-राग का परिणाम मेरे द्रव्यस्वभाव से हो - ऐसा तो मैं नहीं परन्तु यहाँ तो चारित्र की व्याख्या लेनी है न? आहाहा! वह राग का परिणाम का मेरे द्रव्यस्वभाव का वह परिणामन नहीं है। इस कारण वह राग का परिणाम परभाव है - ऐसा जिसने अन्दर ज्ञानस्वभाव में उसका मलिन और दुःखस्वभाव से जानकर, मेरा भगवान तो ज्ञान और आनन्दस्वभाव है। ऐसे राग को दुःख के भावरूप जानकर और उस ज्ञान के स्वभाव में दुःख के भाव का (अभाव है) वहाँ उस दुःख का भाव है, इसलिए हुआ ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही स्व और पर को स्वतः पर की अपेक्षा बिना जानना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! अब ऐसा कहाँ पकड़ना; निवृत्ति नहीं मिलती, फुरसत नहीं मिलती - ऐसी बात है प्रभु! यह तो प्रत्याख्यान आया न? आहाहा!

फिर इसमें कहा न कि राग को राग के लक्षण से जानकर और उसे उसरूप न परिणामन कर ज्ञान जाननेवाला है - ऐसे ज्ञान, ज्ञानरूप स्थिर हुआ; सम्यग्दर्शन ज्ञान तो है तदुपरान्त जब राग की अवस्था को परभावरूप से ज्ञान में पृथकरूप से भेद से जानकर और जाननेवाला जाननेवाले में स्थिर हुआ, आहाहा! उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है। प्रत्याख्यान का अर्थ त्याग है, परन्तु वह राग का त्याग भी नाममात्र है यहाँ तो कहते हैं।

आहाहा! क्या शैली! 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, ताँतें वचन भेद भ्रम भारी,

स्वशक्ति स्वज्ञेय प्रकाशी, परशक्ति परज्ञेय' आहाहा! भगवान का ज्ञानपर्याय का स्वभाव... यह तो सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित की बात है न? और ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक स्वज्ञेय का स्वभाव, आहाहा! और परज्ञेय को परज्ञेयरूप से अस्तित्व होने पर भी, ज्ञान की पर्याय उसकी अपेक्षा बिना उसे और स्व को जानते हुए, अन्दर स्थिर हो और रागरूप न हो, उसे राग का त्याग कहना, वह नाममात्र है, वह भी ज्ञानरूप से ज्ञान स्थिर हुआ। आहाहा! अन्दर जमा, भाई! कहते हैं न, नहीं? चन्दुभाई - जमा, कहते हैं न? तुम्हारे चन्दुभाई डॉक्टर! आहाहा!

इसकी प्रथम पहचान तो यह करे कि यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु अपने लक्षण को जानता हुआ ज्ञानी हुआ परन्तु अब चारित्र... शिष्य ने ऐसा पूछा है न कि मुझे श्रद्धा-ज्ञान तो हुआ है, प्रभु! परन्तु अब मेरे आचरण के लिए, मेरे आचरण करना है, क्योंकि मेरे आचरण में अभी राग का आचरण है, भले मेरी दृष्टि के विषय में नहीं परन्तु मेरे परिणमन में होता है, तो मुझे मेरा आचरण करना है तो उस राग के त्याग की विधि क्या? राग का त्यागरूपी प्रत्याख्यान किस प्रकार हो? आहाहा! तो गुरु ने कहा कि जैसे धोबी के घर से पर का वस्त्र लाकर और निज मानकर सो रहा था, उसे दूसरे ने जगाया कि भाई! इस वस्त्र का लक्षण तो देखो! यह तेरा कोट नहीं है, यह कोट लम्बा, (तेरा नहीं है।) इसके लक्षण देख तो सही! आहाहा! ऐसा जानकर, ओढ़े हुए है फिर भी पररूप से दृष्टि में आ गया और स्थिरता में भी यह मेरा नहीं है - ऐसा हो गया। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा, राग के विकल्प को अपना मानकर सो रहा था, वह तो जगा है अब, परन्तु जो अस्थिरता में था - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो एक साथ सब बात लेते हैं। मिथ्यात्व से लेकर सब। अस्थिरता में भी मिथ्यात्व और राग का त्याग करके प्रत्याख्यान - ऐसा बतलाते हैं, भाई! जयसेनाचार्य की टीका में तो मिथ्यात्व और रागादि अव्रत आदि सब लिया है। सबकी बात उसकी शुरुआत में ही सीधे उठायी है। आहाहा!

'राग आग दाह दहै सदा' - ऐसे राग के-परभाव के लक्षण जानकर और ज्ञानस्वभाव में ज्ञान स्थिर होता है और परभावरूप से वह ज्ञानस्वभाव उस परज्ञेयरूप से परिणमित नहीं

होता, स्वज्ञेय के ज्ञान की स्थिरतारूप परिणमता है, उसे राग के त्यागरूपी चारित्र कहा जाता है। आहाहा! वह रागवर्जन यह आया है न भाई? १५५ 'जीवादि सद्वहणं' आहाहा! जब श्रीगुरु परभाव का विवेक ( भेदज्ञान ) करके उसे एक आत्मभावरूप करते हैं..... दृष्टि तो थी परन्तु तदुपरान्त वापस विशेष ( स्थिरता ) करायी है। राग तेरा नहीं है, तेरा स्वभाव यह ( ज्ञान ) है, ऐसा साथ में लेकर स्थिरता कराते हैं। आत्मभावरूप करते हैं और कहते हैं कि 'तू शीघ्र जाग,..... शीघ्र जाग; धीरे-धीरे जागूँगा - ऐसा नहीं। आहाहा! सावधान हो,.... भगवान तू सावधान हो। राग में सावधान है, उसे जाननेवाला तू अब सावधान हो। आहाहा! अब ऐसी बात समझने में कठिन पड़ती है न? इसलिए लोग इसे निश्चय कहकर निकाल देते हैं। यह व्यवहार करो भाई! यह व्यवहार तो अज्ञान है भाई! आहाहा!

एक आत्मभावरूप करते हैं और कहते हैं कि 'तू शीघ्र जाग,.... भाई! तू जाग न! यह राग का लक्षण भिन्न है और तेरा लक्षण भिन्न है - ऐसे जाग! भले सम्यग्दृष्टि पूछता है, उसे भी वापस इस प्रकार कहा। आहाहा! सम्यग्दृष्टि पूछता है न? कि मुझे श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं परन्तु अब मुझे मेरा आचरण करना है, उसे पर का त्याग करना है, वह किस प्रकार हो? आहाहा! आहाहा! पर का त्याग अर्थात् क्या? स्वयं पररूप नहीं हुआ, इसलिए उसे पर का त्याग नाममात्र है। हुआ है स्वयं ज्ञान, ज्ञानरूप रहा, जाननेवाला जाननेवाले में रहा, जाननेवाला ज्ञेय के रागरूप नहीं हुआ। आहाहा! उसके ज्ञानरूप हुआ और होकर ( ज्ञान ) स्थिर हुआ। आहाहा! वह ज्ञान जमा, अन्दर में आनन्द की दशा लेता हुआ जमा। आहाहा! उसे यहाँ चारित्र और प्रत्याख्यान कहते हैं, उसने राग का त्याग किया - ऐसा नाममात्र कथन किया जाता है। आहाहा! पर के त्याग की तो यहाँ बात है ही नहीं। आहाहा! यह स्त्री, पुत्र छोड़ा और गृहस्थाश्रम छोड़ा.... यह चीज तो ग्रहण अथवा छोड़ी ही कब है? उसे ग्रहण भी नहीं किया है और छोड़ा भी नहीं है। यह ग्रहण-त्याग रहित तो आत्मा अनादि-अनन्त है। आहाहा! मात्र राग को ग्रहण किया था अपने स्वरूप के भान बिना, उसे अपने रूप से ग्रहण किया था कहो, या परिणमन किया था कहो। आहाहा! अब उसका त्याग करना है, अर्थात् कि आहाहा! भगवान! तू जागती ज्योत है न? सावधान हो,.... आहाहा!

'जाग कर देखूँ तो जगत दिखे नहीं' - आहाहा! जहाँ चैतन्यस्वभाव को जागकर

देखा, तब राग के भाव को पररूप से जाना। आहाहा! वह तो मेरी ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय है, पर है। आहाहा! मेरे स्वरूप में वह परज्ञेय नहीं है, मेरे द्रव्य का स्वभाव पररूप होना, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! पर्यायरूप जो अस्थिरता थी, उसे द्रव्यस्वभावरूप से आत्मा को जाना और उस रागरूप नहीं हुआ, परन्तु यह जाना है कि यह पर है – ऐसा जानकर वहाँ से लक्ष्य छोड़ दिया और स्वरूप के लक्ष्य में स्थिर हुआ। आहाहा! भगवन! तेरी व्याख्या तो देखो! यह चारित्र! आहाहा! भगवत्स्वरूप तो पहले से कहा था न? भगवान ज्ञाताद्रव्य, भगवन्त ज्ञाताद्रव्यं – संस्कृत टीका में भगवत् ज्ञातृद्रव्यं – वह जहाँ जगकर, राग को पररूप से लक्षण से देखा-जाना। आहाहा! एकत्व तो छूट गया था, परन्तु यहाँ फिर से विशेष बात ली गयी है। समझ में आया? आहाहा! जो अस्थिरतारूप था... आहाहा! उसे पररूप के लक्षणों को ज्ञान ने जाना और वह ज्ञान, पररूप नहीं हुआ और उस काल में वह ज्ञान, स्थिररूप हुआ, उसे यहाँ प्रत्याख्यान / चारित्र कहते हैं। आहाहा!

लोग कुछ का कुछ मानते हैं, प्रभु! भाई! उस विपरीत मान्यता का फल, बापू! वह वर्तमान दुःख है, भाई! तुझे इसका पता नहीं है और उसके दुःख के फल, तत्त्व की विराधना का फल तो निगोद है। आहाहा! तत्त्व की आराधना का फल तो मोक्ष है। आहाहा! बीच में शुभाशुभभाव, वह चारगति का कारण है। समझ में आया?

तेरा यह आत्मा वास्तव में एक ही है.... एक ज्ञानमात्र ही है.... ऐसा गुरु ने कहा है। जो अनेकरूप दिखता है, वह तू नहीं है। राग के विकार के परिणामरूप दिखता है, वह तू नहीं है। वह तू नहीं है, उसका तो पता था परन्तु वापस विशेष कराया। आहाहा! वह वास्तव में तो एक ही है। भगवान तो ज्ञानस्वरूपी एक ही है, उसमें जो यह राग-द्वेषादि, दया, दान आदि के भाव अनेक उत्पन्न होते हैं, वे एकस्वरूप की चीज नहीं है। आहाहा! ऐसी गम्भीर चीज एक-एक श्लोक में! आहाहा! पूरा समुद्र भरा है।

यहाँ यह कहा कि एक... एक ही है, तू एक ही है। ज्ञान आनन्दादि स्वरूप तू एक ही है। अनेकरूप जो ज्ञान, राग और पुण्य तथा दया-दान के विकल्परूप दिखता है, उस अनेकरूप तू नहीं। आहाहा! उस अनेकरूप जो पर्याय में होता था, वह तू नहीं – ऐसा कहकर ज्ञान को राग से परान्मुख किया और ज्ञान, ज्ञान में स्थिर होता है। आहाहा! (अन्य

सर्व परद्रव्य के भाव हैं ),.... वे सर्व अन्य हैं। राग आदि का भाव - चाहे तो महाव्रत का हो, वह सब पर है। आहाहा! यहाँ ऐसा कहते हैं कि महाव्रत का परिणाम करते-करते, वह द्रव्यचारित्र है (उससे) भावचारित्र होगा... अरे भगवान प्रभु! तू क्या करता है भाई!

**श्रोता :** तत्त्वार्थसूत्र में तो आस्रव कहा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आस्रव है, यह भले कहा वहाँ, परन्तु वहाँ उसे लाभ कहा है, वापस ऐसा कहा है। दूसरे ग्रन्थ में कहा है कि वह धर्म है, पुण्य, वह धर्म है। यह तो व्यवहारधर्म की व्याख्या है, जिसे आत्मा, आत्मा में अनुभव से स्थिर हुआ, वह निश्चयधर्म यह है और जो राग आदि आता है, तब उसे (राग) व्यवहारधर्म का आरोप दिया है। निश्चय तो अधर्म ही है, अचारित्र है, चारित्र का दोष है। आहाहा! वास्तव में आत्मा एक ही है, ज्ञानमात्र ही है। आहाहा! उस रागरूप यह आत्मा नहीं है। आहाहा!

( अन्य सर्व परद्रव्य के भाव हैं ), ' तब बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य.... यहाँ देखो! आहाहा! पंचम काल, इसलिए जीवों को यह बात ली है, उसे बारम्बार सुनने में मिला, अच्छा (चौथा) काल में तो एक बार सुने और एकदम उतर जाये - ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो पंचम काल है न? समझ में आया? तब बारम्बार कहे गये... बारम्बार कहे गये अर्थात्? गुरु ने तो एक बार कहा था परन्तु शिष्य ने बारम्बार याद किया। अड़तीस गाथा में आता है न, आहाहा! बारम्बार... उसे राग से भिन्न (समझाया) राग से भिन्न - ऐसा जानने में विवेक किया, आहाहा! मेरा प्रभु ज्ञायक है और राग से भिन्न है - ऐसा बारम्बार अन्दर में विवेक किया; इस कारण उसे गुरु ने बारम्बार कहा, ऐसे सुनने में विवेक किया। आहाहा! अब ऐसी बात को मसकरी करके निकाल डालते हैं, वह मानो कोई चीज ही नहीं है। आहाहा!

दृष्टि में मिथ्यात्व का त्याग हुआ - ऐसा कहना, वह भी कहते हैं नाममात्र है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु का जहाँ दृष्टि में स्वीकार होकर सृष्टि हुई - सम्यग्दर्शन की (सृष्टि हुई) आहाहा! उसमें सब पूरी चीज पूर्ण है, वह प्रतीति में आ गयी और उसमें मैं रागरूप नहीं हूँ, यह भी उसमें आ गया और उस श्रद्धा में ऐसा भी आया कि अब मैं उसमें जितना स्थिर होऊँगा उतनी अस्थिरता (और) कर्म का नाश होगा। आहाहा! श्रद्धा में भी

ऐसा आया। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में मैं स्थिर होऊँगा, आहाहा! ऐसा श्रद्धा में आया कि उसमें मैं जितना स्थिर होऊँगा, उतना अस्थिरता का और कर्म का नाश होगा। वह यहाँ स्थिरता की बात अब ली है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ भी ऐसा आता है न? श्रद्धा में ऐसा हुआ और फिर आचरण करता है (समयसार) १७-१८ गाथा! उस राजा को पहचानकर, फिर श्रद्धा करके और आचरण करके... इसी प्रकार आत्मा को पहचानकर और श्रद्धा करके और फिर उसी का आचरण करके.... आहाहा! चारों ओर से देखो तो वस्तु को एक ही प्रकार से सिद्ध करते हैं। आहाहा! भिन्न-भिन्न पहलुओं से। अनन्त द्रव्य और राग के मध्य में प्रभु, परन्तु तू अकेला ज्ञानस्वरूप भिन्न है - ऐसा इसे गुरु ने बारम्बार कहा, अर्थात् बारम्बार कहा हुआ याद किया, स्मरण में लिया। आहाहा! कि परसन्मुख के लक्ष्यवाला विकार, वह मेरा स्वरूप नहीं है - ऐसा भान तो हुआ था परन्तु भान में अब विशेष स्थिरता की, आहाहा! उसरूप होना, यह मेरा द्रव्यस्वभाव नहीं, ऐसा आया न? पहले आ गया है, द्रव्यस्वभाव से रागरूप व्याप्त होना, वह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

मेरा प्रभु ज्ञान, आनन्द और शान्ति का स्वभाव द्रव्य का, उस द्रव्यस्वभावरूप है; विभावरूप होना, वह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! द्रव्यस्वभावरूप, विभाव का व्याप्य और स्वभाव का व्यापक (- ऐसा नहीं है)। आहाहा! पहले आ गया था, कल आया था। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं है, और पामरता में रुक गया, प्रभु! आहाहा! उस पामरता को छोड़ने के लिए भी कहते हैं कि उसका त्याग करना, वह भी एक नाममात्र है। आहाहा! प्रभु! तू प्रभुपने से छूटा नहीं है, आहाहा! प्रभु, प्रभुरूप रहा है, वही उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या भी सुनने को नहीं मिलती, अब वह कब समझे बापू! आहाहा!

**श्रोता :** अनादि का संसार शान्त हो जाये - ऐसी बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी बात है बापू! भगवान तेरा स्वरूप ही - प्रभु का (स्वरूप ही) ऐसा है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, वह द्रव्यस्वभाव से दया, दान के रागरूप होना, यह इसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! वह व्यापक भगवान का व्याप्य विकार, वह उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का

स्वभाव, निर्मलपर्यायरूप व्याप्य और व्यापक होना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! अरे! कहाँ यह देखने को निवृत्त नहीं होता, अन्दर प्रभु! आहाहा! जिसकी शक्ति का पार नहीं है, ऐसी शक्ति का नाथ भगवान आत्मा, आहाहा! उसे पररूप होना, रागरूप (होना), वह द्रव्य का-वस्तु का स्वभाव नहीं है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन प्रगट करके और फिर जब चारित्र लेता है, प्रत्याख्यान करता है, तब उस अस्थिरता के रागरूप में न होऊँ - ऐसा मेरा स्वभाव है और मेरा स्वभाव तो स्थिररूप ज्ञान की शान्तिरूप होना - ऐसा मेरा स्वभाव, ऐसा होकर आनन्द में स्थिर होता है प्रभु, और रागरूप नहीं होता, उस दशा को प्रत्याख्यान और चारित्र कहते हैं। आहाहा!

**श्रोता :** अमृत वाणी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वाणी ऐसी है बापू! आहाहा!

**बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य....** आगम का वाक्य, देखा? यह क्या कहते हैं? पहले गुरु ने कहा था, वह आगम ऐसा कहता है। गुरु वाक्य से भी आगम ऐसा कहता है। गुरु के वाक्य ऐसे होते हैं कि राग से तेरी चीज भिन्न है। ये दया, दान, और व्रत, भक्ति के परिणाम जो राग हैं, उनसे भी तू भिन्न है - ऐसे आगम का वाक्य और गुरु के वाक्य हैं। आहाहा! समझ में आया? दो बात रखी थी - एक तो गुरु ने भेद कराया और यह आगम का वाक्य है - वापस ऐसा कहा। आहाहा! क्या शैली! गजब शैली!! आहाहा! भगवान! तू अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है न भाई! तुझे पता नहीं। इस तेरी प्रभुता में तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति पड़ी है, नाथ! आहाहा! उसका जिसे भान हुआ और जब रागादि - दया, दान के विकल्प हैं, वह विकार और दुःखरूप है, उसका मेरे स्वभावरूप होना - ऐसा मेरा स्वरूप नहीं है; इस प्रकार अन्दर जानकर... आहाहा! वह आत्मा, आत्मारूप रहता है; ज्ञान, ज्ञानरूप अर्थात् यह आत्मा, आत्मारूप रहता है, स्थिर होता है और रागरूप नहीं होता, इसका नाम यहाँ भगवान ने प्रत्याख्यान और भगवान को चारित्र कहा गया है। अरेरे! यह व्याख्या, अब ऐसी बात! ऐसा स्वरूप है, भाई! इसे अनन्त-अनन्त काल में यह चौरासी के अवतार में भटककर मरा है, भाई! यह दुःखी है, दुःखी, इसे भान नहीं है। मैं दुःखी हूँ - ऐसा भी भान इसे नहीं है। आहाहा! अरबोंपति और



बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस हजार का महीने का वेतनदार, ये सब प्राणी बेचारे दुःखी हैं। उन्हें भगवान आनन्द के नाथ स्वभाव का पता नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो समकिति भी, आहाहा! अपना आचरण करने का इच्छुक-इस दुःख के आचरण को दुःखरूप जानता है। इस अव्रत के भाव को, रागभाव को दुःखरूप जानता है। मेरा नाथ तो आनन्दस्वरूप प्रभु विराजमान है। आहाहा! अरे रे! वह आनन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, इस राग के लक्षण को पररूप से दुःखरूप से जानकर और आनन्द का नाथ, दुःखरूप परिणमे - वह मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! वह तो पर्याय में कमजोरी के कारण, समकिति को भी रागादि-दुःख की पर्याय होती है। आहाहा! परन्तु अब तो मुझे स्वरूप का आचरण करना है। उस स्वरूप के आचरण के लिए मेरा स्वभाव आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान की महिमावाला प्रभु, उस दुःख की पर्यायरूप नहीं होता - ऐसा तो मेरा स्वभाव है। इस प्रकार स्वभाव को जानकर और राग के दुःख के परिणामरूप नहीं हुआ, इसका नाम अन्दर में स्थिर हुआ और इसका नाम चारित्र तथा प्रत्याख्यान है। विशेष व्याख्यान हो गया। लो नौ हो गये नौ।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )